International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-12-2025; Accepted: 22-01-2026; Published: 06-02-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 83-87

कविता और सत्ता का संवाद: समकालीन हिंदी काव्य में राजनीतिक यथार्थ

डॉ. नितिन पाटील
सहायक अध्यापक, भाषा विभाग, यशवंतपुर कॅम्पस, क्रिस्ट विश्वविद्यालय, बेंगलुरू, कर्नाटक, भारत

सारांश
राजनीति और समाज के पारस्परिक संबंधों के बिना न तो सामाजिक परिवर्तन संभव है और न ही साहित्य में क्रांतिकारी चेतना का विकास। समकालीन हिंदी कविता इस तथ्य को रेखांकित करती है कि कवि अपने समय की राजनीतिक संरचना और सत्ता–तंत्र से गहरे रूप में संबद्ध रहा है। समकालीन कवियों ने अपने युग की राजनीतिक व्यवस्था को भली–भाँति पहचानते हुए, अपने काव्य में राजनीतिक विद्रूपताओं तथा उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न सामान्य जन के शोषण को सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है। यह अभिव्यक्ति कहीं व्यंग्य के माध्यम से तो कहीं तीखे आलोचनात्मक प्रहारों के रूप में सामने आती है, जिसका उद्देश्य सामाजिक चेतना का विकास करना रहा है। समकालीन हिंदी कविता का कालखंड भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय राजनीतिक संकटों से गहराई से जुड़ा हुआ रहा है। इस दौर के कवियों ने समाज को राजनीतिक अर्थवत्ता प्रदान करते हुए समवेत सामाजिक मुक्ति की दिशा में काव्य को अग्रसर किया। उन्होंने अपने कवि–कर्म की सामाजिक भूमिका को पहचानते हुए, समाज के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वहन किया तथा जनमानस को जागृत करने का निरंतर प्रयास किया। विशेष रूप से समकालीन हिंदी कविता (1990–2000) के कालखंड में राजनीतिक विद्रूपताओं, भारतीय लोकतंत्र की संरचनात्मक कमजोरियों, चुनावी प्रहसनों तथा भ्रष्टाचार जैसे विषयों को केंद्रीय स्थान प्राप्त हुआ। इस काल के कवियों ने भारतीय राजनीति में निहित कूटनीति, अवसरवाद, स्वार्थवृत्ति और सत्ता–संघर्ष को व्यंग्यात्मक एवं आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार समकालीन कविता न केवल राजनीतिक यथार्थ को उजागर करती है, बल्कि जनता में राजनीतिक और सामाजिक चेतना उत्पन्न करने का भी महत्वपूर्ण कार्य करती है।

मूल शब्दः समकालीन हिंदी कविता, राजनीति, सत्ता, लोकतंत्र, भ्रष्टाचार, विद्रूपता, चुनाव, अवसरवाद, मार्क्सवाद, प्रजातंत्र पर व्यंग्य

विश्व की सर्वाधिक प्राचीन और लोकप्रिय साहित्यिक विधा कविता के माध्यम से कवि अपने भावों और विचारों को समाज तक संप्रेषित करता है। शब्दों के सहारे वह मानव–मन के मानस–पटल पर विचारों के चित्र अंकित करता है। कवि द्वारा निर्मित यही बिंब सामाजिक चेतना के संवाहक बनते हैं। काव्य–प्रक्रिया में व्यक्ति की वैयक्तिकता के साथ–साथ उसकी सामाजिक चेतना भी अभिव्यक्त होती है। कवि की दृष्टि वैयक्तिक संवेदनाओं के निज अनुभवों से आगे बढ़कर मानव–संवेदना के ज्ञात–अज्ञात, प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सभी मानवीय पक्षों को उद्घाटित करती है। सदियों से कविता का लक्ष्य मानवता की स्थापना रहा है। उच्च कोटि के काव्य–सृजन के माध्यम से समाज में चेतना का विस्तार होता है, नवजागरण का संचार होता है और मानव–मात्र में मानवीय मूल्यों की अमिय धारा प्रवाहित होती है। विवेक का यही जागरण मनुष्य को मानसिक रूप से सशक्त बनाता है तथा उसे प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है। समकालीन हिंदी कवियों ने संवेदनात्मक सजगता और गहन चिंतन के साथ मानवीयता एवं विवेक को अपनी काव्य–दृष्टि का केंद्रीय उद्देश्य बनाते हुए समाज में चेतना के संचार का प्रयास किया है। उन्होंने राजनीति, संस्कृति, धर्म, बाज़ारवाद, भूमंडलीकरण आदि स्तरों पर व्याप्त अराजकता की ओर संकेत करते हुए नए भावबोध और नई संवेदनाओं को प्रस्तुत किया है।

समकालीन हिंदी कवि जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम यथार्थ के सशक्त अभिव्यक्ताकार हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में राजनीति से लेकर सत्ता–तंत्र की विविध वास्तविकताओं को शब्दबद्ध किया है। राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय कुचक्रों, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, चुनावी प्रक्रिया तथा लोकतंत्र के विकृत रूपों को उजागर कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि समाज, साहित्य और राजनीति के मध्य गहरा अंतर्संबंध विद्यमान है। राजनीति के बिना न तो समाज में सार्थक परिवर्तन संभव है और न ही साहित्य में क्रांतिकारी चेतना का विकास। "समकालीन कविता में राजनीतिक संदर्भों, प्रश्नों और घटनाओं का अच्छा ख़ासा जुलूस सक्रिय है। साहित्य और राजनीति पर वर्षों से चल रहे विवाद को एक तरह से साठोत्तरी अथवा समकालीन कवियों ने समाप्त कर दिया है। साहित्य को राजनीति से दूर रखने या राजनीति को साहित्य में अस्पृश्य मानने की बात अब नहीं रही।"[1]

समकालीन हिंदी कविता का समय भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार के क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय राजनीतिक संकटों से घिरा हुआ रहा है। इस काल के कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से समाज को राजनीतिक अर्थवत्ता प्रदान करते हुए समवेत सामाजिक मुक्ति की दिशा में अग्रसर किया। समकालीन कविता केवल सौंदर्याभिव्यक्ति तक सीमित न रहकर अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जटिलताओं से सीधा संवाद स्थापित करती है तथा जनसाधारण में चेतना और प्रतिरोध की भावना विकसित करने का कार्य करती है। है। सुखवीर सिंह के मतानुसार, "चेतना की दृष्टि से देखें तो समकालीन हिंदी–कविता का मूल स्वर राजनीतिक है। इसमें राजनीति के दबावों को स्वीकार किया गया है। राजनीति के अनैतिक, अमानवीय, क्रूर, स्वार्थ, आतंकमय चरित्र को उजागर किया गया है। मनुष्य की पीड़ा को सामाजिक अर्थ देने के प्रयत्न में यह कविता वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था और स्वार्थ राजनीति से उसके अनैतिक गठजोड़ से उत्पन्न बहुस्तरीय जटिलताओं को उघाड़ते हुए पाठक को चिंतन का अविस्मरणीय अंग बनाने के लिए प्रयत्नशील है।"[2] इस कालखंड के काव्य में राजनीतिक विद्रूपताओं, भारतीय लोकतंत्र की जटिलताओं, चुनावी प्रक्रियाओं के प्रहसन तथा भ्रष्टाचार जैसे विषयों को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है।

भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय नागरिकों ने नए संविधान को अपनाया, जिसमें सभी को समानता और स्वतंत्रता के अधिकार प्राप्त हुए। तथापि, सत्ता और स्वार्थ के लालची दलों तथा राजनेताओं ने

लगातार अपनी सुविधानुसार संविधान का दुरुपयोग किया है। भ्रष्ट नेताओं ने अपने अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए सामान्य जन को उसके मूल अधिकारों से वंचित रखा है। जनतंत्र के नाम पर लोगों को विभिन्न आश्वासनों के माध्यम से वोट प्राप्त किए जाते हैं, किन्तु चुनावों के पश्चात जनता को केवल औपचारिकता के रूप में देखा जाता है। इससे व्यक्ति की आकांक्षा और स्वतंत्रता, मानो किसी भारी चट्टान के नीचे दब गई हो, अनुभव होती है।

समकालीन कवियों की चिंताएँ केवल भावुक चिंताएँ नहीं हैं; वे अपने समय की विकट परिस्थितियों और सामाजिक सरोकारों की वास्तविक चिंताएँ हैं, जिनका उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप जनता के सामने प्रस्तुत करना है। कुमार अंबुज अपनी कविता 'भरी हुई बस में लाल सफेदवाला आदमी' में सामान्य व्यक्ति के माध्यम से लोकतंत्र के वास्तविक चेहरे को उजागर करने का प्रयास करते हैं। कविता में वह सामान्य मनुष्य, जो सभी सुख–सुविधाओं का हकदार है, किन्तु उनसे वंचित रहता है, की पीड़ा को सामने लाती है। इसी संदर्भ में कवि कहते हैं—

"पूछना चाहता है लाल सफेवाला आदमी
जब वोट डालने के लिए चलना पड़ता है
सिर्फ दो मील
तो इलाज करने के लिए बीस मील क्यों?
क्यों नहीं है उसके अपने गाँव में डामर–रोड
और कम से कम एक कंपाउंडर वाला अस्पताल
वह जानना चाहता है इस बस में
जब भरे–पूरे स्वस्थ विधायाक के लिए
सुरक्षित है बैठने के लिए जगह
तो एक बीमार बच्चे
और थके–हारे इंसान के लिए क्यों नहीं?"[3]

भारतीय लोकतंत्र में सामान्य नागरिक को न केवल अपने मूलभूत अधिकारों की अपेक्षा होती है, बल्कि वह अपने सामाजिक और व्यक्तिगत विकास की भी आकांक्षा रखता है। वह अपने और सत्ताधारियों के बीच निर्मित असमानताओं को भली–भाँति समझता है और नेताओं की उदासीनता एवं निष्ठुरता पर प्रश्न उठाता है।

समकालीन हिंदी कवियों की विशेषता यह रही है कि उन्होंने राजनीति के भयावह और विकृत चेहरे को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। अधिकांश राजनेता अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए जनता को जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्म आदि के मुद्दों में उलझाकर सत्ता में टिके रहते हैं। अवसरवादिता, भ्रष्टाचार तथा पुलिस प्रशासन के दुरुपयोग के माध्यम से वे अपने निजी हितों की पूर्ति में व्यस्त रहते हैं। नेताओं की स्वार्थनीति और भ्रष्टाचार के अंधकार ने न केवल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समृद्धि को प्रभावित किया है, बल्कि व्यक्ति की आंतरिक संवेदना को भी झकझोर दिया है।

राजनीतिक विद्रूपताओं के चित्रण के माध्यम से समकालीन कवि व्यक्ति की संवेदना को स्पर्श करते हुए अनेक प्रश्न उठाते हैं। कुमार विकल अपनी कविता 'खौफनाक समय के बच्चे' में इस प्रकार कहते हैं—

"वे जानना चाहते है
लोकल बस में
जिस अंकल के प्लास्टिक डिब्बे में
दो सूखी रोटियाँ
और थोड़ा–सा अचार था
उसकी पुलिस ने तलाशी क्यों ली
पुलिस ने उसे क्यों पीटा
क्यों मारा....."[4]

राजनीति के इस विकृत चेहरे ने सामान्य नागरिक के जीवन को भयग्रस्त बना दिया है। वह स्वयं को कहीं भी सुरक्षित महसूस नहीं करता और अनिश्चितता उसके जीवन की पर्याय बन गई है। यद्यपि साहस और निर्भीकता में मानवता की विजय प्रतीत होती है, वास्तविक स्थिति इसके ठीक विपरीत है। सत्ता की क्रूरता, अवसरवादिता और भ्रष्टाचार के कारण समाज में भय और खौफ का वातावरण निर्मित हो गया है। नागरिक अपने अधिकारों के प्रति असुरक्षित हैं और अक्सर अपने जीवन में नियंत्रण की भावना खो चुके प्रतीत होते हैं।

समकालीन हिंदी कवि इस भय और खौफ की स्थिति को अपने काव्य में असमंजस और तीव्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। अशोक वाजपेयी इस विषय को अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"जब लगता है कि आधी रात को
दरवाजे पर दस्तक देगा वर्दीधारी
किसी न किए गए जुर्म के लिए लेने तलाशी
तब अंधेरे में पालतू बिल्ली की तरह
कोने में दुबकी रहती है उम्मीद
यह सोचते हुए कि बाहर सिर्फ हवा हो
शायद।"[5]

समान रूप से, कुमार अंबुज अपनी कविता 'भरी हुई बस में लाल सफेदवाला आदमी' के माध्यम से सामान्य नागरिक की कठिनाई और लोकतंत्र की वास्तविकता को उजागर करते हैं। इस प्रकार समकालीन कवियों ने अपने समय की राजनीतिक व्यवस्था को गहन रूप से समझते हुए, अपने काव्य के माध्यम से समाज में चेतना और विवेक का संचार करने का प्रयास किया है। उन्होंने राजनीतिक विद्रूपताओं, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और लोकतंत्र के विकृत रूपों को उजागर करते हुए सामान्य नागरिक के अधिकारों और उनके हक की सुरक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का कार्य किया है। इन कवियों का उद्देश्य केवल भावुक अभिव्यक्ति नहीं है; बल्कि यह समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जटिलताओं का सजीव प्रतिबिंब प्रस्तुत करना और समाज में न्याय, विवेक तथा जागरूकता का संचार करना है। इस दृष्टि से समकालीन हिंदी कविता समाज के लिए एक आलोचनात्मक और सचेतक माध्यम के रूप में कार्य करती है, जो भय और अनिश्चितता के बीच नागरिकों में साहस और जागरूकता उत्पन्न करती है।

जनतंत्र में शासन के चालक जनता के प्रतिनिधि होते हैं; इसलिए किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदान और मताधिकार दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रलोभनों से मुक्त और सुरक्षित वातावरण में मतदान, नागरिकों को उज्ज्वल भविष्य की आशा प्रदान करता है। भारतीय लोकतंत्र में चुनाव प्रत्येक पाँच वर्ष के अंतराल पर एक उत्सव के रूप में आयोजित किए जाते हैं, जिसमें जनता अपनी सूझ–बूझ का प्रयोग करते हुए योग्य दल और प्रतिनिधि चुनकर प्रशासन के लिए निर्णय लेती है। समकालीन हिंदी कविता चुनाव, मतदाताओं की भीड़, रैलियों और चुनावी प्रक्रियाओं की गहन समीक्षा करती है। इन कवियों ने चुनाव के समय विभिन्न दलों एवं पार्टियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों और रणनीतियों को परत–दर–परत अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जनता को आकर्षित करने या भ्रमित करने हेतु बनाए गए आकर्षक घोषणा पत्रों, पार्टी टिकट की होड़, उम्मीदवारों की निकलती रैलियों और जुलूसों तथा क्षेत्र, धर्म और आर्थिक स्थिति का चुनावी लाभ उठाने की चतुराई पर टिप्पणियां की हैं। इसके अलावा, छोटे–बड़े पूँजीपतियों द्वारा प्रत्याशियों और राजनीतिक

दलों को दी जाने वाली आर्थिक और अन्य प्रकार की सहायता के समीकरणों का भी कवियों ने विश्लेषण किया है। जीत के बाद उम्मीदवारों के व्यवहार में बदलाव और पूँजीपतियों के हित में उनकी सक्रियता, साथ ही लुभावने आश्वासनों और प्रभावशाली नारों के माध्यम से जनता को बहकाने की कुटिलता को भी कविता में प्रस्तुत किया गया है। कुमार विकल ने इस चुनावी प्रहसन पर बच्चों के सवालों के माध्यम से लिखा है,

"बच्चे तो हमेशा
नये–नये सवाल पूछते जायेंगे
जैसे
मछलियाँ चश्मे क्यों नहीं पहनलेती
ताकि मछेरों को देख पाये
और उनके जालों से भाग जाये"[6]

यहाँ चश्मे का प्रतीक जनता द्वारा विवेक और जागरूकता के प्रयोग को दर्शाता है। समकालीन कवियों ने चुनाव के समय घटित होने वाली हर छोटी–बड़ी घटना को अपने काव्य में व्यक्त कर समाज को सजग और सचेत करने का प्रयास किया है। वे प्रलोभनों, लालच और राजनीतिक बहकावे से होने वाले संभावित नुकसान के प्रति आम आदमी को जागरूक करने का कार्य करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में अपेक्षित परिवर्तन नहीं देखा गया है। प्रजातंत्र के नाम पर जनता को दिखाए गए सुनहरे सपने आज पूर्णतः चकनाचूर होते प्रतीत होते हैं। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार होता है; किन्तु भारतीय वास्तविकता में यदि कोई नागरिक किसी राजनेता या दल के विरोध में बोलता है तो उसे डराया, धमकाया या सताया जाता है। भारत, जिसे विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र कहा जाता है, वास्तविकता में प्रजातांत्रिक कर्मों के सही अर्थों में समर्थन नहीं करता। यहाँ, जहाँ शांति और सौहार्दपूर्ण वातावरण की बात की जाती है, वहीं सांप्रदायिकता और असंतोष राजनीति की आंतरिक धड़कन की तरह कार्य करते हैं।

समकालीन हिंदी कवियों ने इस बदलती राजनीतिक परिस्थिति को गहराई से समझा और परखा है। उन्होंने अपने काव्य में राजनीति की हर चाल, भ्रष्टाचार, सत्ता–संघर्ष और अवसरवादिता को व्यंग्य और तीखे प्रहारों के माध्यम से उजागर किया है। दशम दशक का राजनीतिक क्षेत्र अनेक उतार–चढ़ावों का साक्षी रहा है। वही नेता, जो कल तक अहिंसा का पाठ पढ़ाने में विश्वास रखते थे, सत्ता के स्वार्थ में हिंसा पर उतर आए। महँगाई और आर्थिक असमानता के इस दौर में जहाँ देश की आधी आबादी एक वक्त का भोजन नहीं जुटा पाती, वहीं जनता को धैर्य का पाठ पढ़ाया जाता है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाने वालों की आवाज दबा दी जाती है, और सुरक्षा के नाम पर नागरिक स्वतंत्रता का हनन सामान्य हो गया है। इन परिस्थितियों में हर भारतवासी यह प्रश्न करता है कि क्या यही वह प्रजातंत्र है, जिसका सपना स्वतंत्रता के समय देखा गया था। आलोकधन्वा अपनी कविता 'चिड़ियाघर के गेंडे' के माध्यम से भारतीय राजनीति पर व्यंग्य करते हैं,

"कलकत्ते के जू में गैंडे ने मुझसे कहा
कि अभी स्वतंत्रता कही नहीं है सब कहीं सुरक्षा है
राजधानी के सबसे बड़े सुरक्षित हिस्से में
पाला जाता है एक आदिम घाव
जो पैदा करता है जंगली बिल्लियों के सहारे पाश्विक अलगाव
तब गैंडे कि कठिन चमड़ी का उपयोग युध्द के लिए नहीं
बल्कि एक अपार करुणा के लिए होना चाहिए।"[7]

समकालीन कवियों ने इस प्रकार भारतीय राजनीति में छिपी कूटनीतियों, अवसरवाद, स्वार्थवृत्ति और सत्ता के खेल को व्यंग्यात्मकता के साथ प्रस्तुत कर समाज में चेतना का संचार करने का प्रयास किया है। उनके काव्य में सत्ता और जनता के बीच के असंतुलन, भ्रष्टाचार के प्रभाव और लोकतंत्र के वास्तविक स्वरूप पर गंभीर चिंतन झलकता है। कविता का उद्देश्य केवल राजनीतिक आलोचना नहीं है, बल्कि आम नागरिक को जागरूक करना, लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति सचेत करना और समाज में न्याय तथा विवेक की भावना स्थापित करना भी है। इस दृष्टि से समकालीन हिंदी कविता न केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति है, बल्कि यह समय की राजनीतिक वास्तविकताओं का सजीव दस्तावेज और चेतक माध्यम भी है।

भारतीय समाज और राजनीति के क्षेत्र में भ्रष्टाचार दीमक की तरह फैलकर समाज और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को दूषित कर रहा है। आज का नागरिक अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और लालच के लिए भ्रष्टाचार की ओर सहज रूप से प्रवृत्त है। डॉ. दिनेशचंद्र वर्मा ने इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है, "भ्रष्टाचार आज समाज की एक स्वीकृत स्थिति बन गयी है। आज कोई भी ऐसा सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालय या विभाग नहीं है जिसमें घुसखोरी न चलती हो। सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में परिव्याप्त यह रोग इतना असहाय हो गया है कि अनेक व्यवस्थाएं, कानून और प्रतिबंध लागू किए जाने के बावजूद यह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।"[8]

हिंदी साहित्य में भ्रष्टाचार के विरोध की परंपरा पूर्वापर से चली आ रही है। समकालीन हिंदी कविता में यह विरोध और तीव्र रूप से दृष्टिगोचर होता है। सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों का आयोजन जनता के कल्याण हेतु किया जाता है, किन्तु भ्रष्ट राजनेताओं की स्वार्थवृत्ति और अवसरवादिता के कारण ये योजनाएं जेब गरम करने का माध्यम बन जाती हैं। इस भ्रष्टाचार के खेल में आम नागरिक, मजदूर, किसान और वे सभी शामिल हैं जो सरकार और नेताओं से सहायता की आशा रखते हैं, उनका शोषण होता है। मदन कश्यप अपने काव्य के माध्यम से इस स्थिति का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं,

"माँ नहीं जानती, पंडितजी जिसके दरवाजे पाँव
रखते हैं, केवल उसी की पाकिट खाली करते हैं।
परन्तु, ये जब एक बार लाल फीता काटते हैं
तब, पूरे देश भर के निर्धन लोगों की जर्जर
जेंबे कट जाती हैं।"[9]

समकालीन कवियों ने भ्रष्टाचार की व्याप्तता, सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं में इसके प्रभाव तथा आम नागरिक पर इसके दुष्परिणामों को गहराई से समझते हुए अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। उनका उद्देश्य केवल आलोचना नहीं है, बल्कि जनता को जागरूक करना, भ्रष्टाचार के प्रभावों के प्रति सजग करना और समाज में नैतिकता और न्याय की भावना को पुनर्स्थापित करना है।

1990 से 2000 के कालखंड में भारत अनेक घोटालों और भ्रष्टाचार की घटनाओं का साक्षी रहा। इस समय में भारतीय राजनीति और प्रशासन प्रणाली में गहन अस्थिरता और अनियमितता देखने को मिली। बोफोर्स कांड ने केवल राजनीतिक दलों और नेताओं को ही नहीं, बल्कि देश की रक्षा नीति और सुरक्षा व्यवस्थाओं को भी भ्रष्टाचार की चपेट में ले लिया। इसके अतिरिक्त, विभिन्न आपदाओं और राहत कार्यों के समय जनता से की गई अपीलों में केंद्र और राज्य सरकारों के कोषों में जमा होने वाला धन अक्सर राजनेताओं, उच्च अधिकारियों और बाबुओं/क्लर्कों की जेबों में समा जाता रहा। आवश्यक मदद और सहायता, जो सीधे जरूरतमंदों तक पहुँचनी चाहिए थी,

अधिकारियों में बंटते–बंटते समाप्त हो जाती थी, जिससे वास्तविक लाभग्राही प्रभावित होते रहे। जयप्रकाश कर्दम अपने काव्य के माध्यम से इस राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार का तीखा चित्र प्रस्तुत करते हैं,

"आओ, नया भारत बनाएं
ऐसा भारत जहां बेकारी हो
भुखमरी हो, लाचारी हो
ऊंच–नीच और छुआछात की बीमारी हो
जहां भ्रष्टाचार का साम्राज्य हो
ईमानदारी और नैतिकता त्याज्य हो
इंसानियत की निर्मम हत्या
हैवानियत का नंगा नाच हो
जहां सच बोलना जुर्म हो
न्याय की कोताही हो
अभिव्यक्ति की आजादी न हो
सोचने की मनाही हो"[10]

समकालीन हिंदी कवियों ने इस राजनीतिक और सामाजिक अराजकता का यथार्थ अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उन्होंने भ्रष्टाचार के फैलाव, प्रशासनिक अनियमितताओं और नेताओं की स्वार्थपरता के प्रभावों को सजीव और प्रखर शब्दों में उजागर किया है। यह विरोध केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि समाज में जागरूकता और चेतना उत्पन्न करने का एक गंभीर प्रयास है। कवि न केवल भ्रष्टाचार की संरचना और परिणामों को उद्घाटित करते हैं, बल्कि आम नागरिक के अधिकारों, न्याय और नैतिकता के हनन की स्थिति को भी सामने लाते हैं।

समकालीन कविता का यह यथार्थपरक स्वर राजनीतिक आलोचना और सामाजिक जागरूकता का एक माध्यम बन जाता है। कवि जनता को भ्रष्टाचार के प्रभाव, समाज में असमानता और प्रशासनिक स्वार्थ के प्रति सचेत करता है। साथ ही, यह काव्य जनता में लोकतांत्रिक मूल्यों और नैतिक विवेक के महत्व को भी उजागर करता है। इस प्रकार, समकालीन हिंदी कविता न केवल समाज के ऐतिहासिक और वर्तमान संकटों का दस्तावेज़ है, बल्कि यह नागरिकों के लिए चेतक और मार्गदर्शक का भी कार्य करती है, जो उन्हें जागरूकता, विवेक और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति प्रेरित करती है।

हिंदी साहित्य में मार्क्स के विचारों को लेकर बहुत–सा साहित्य लिखा गया है। जहाँ कुछ रचनाकारों ने इसके समर्थन में लिखा है, वहीं कुछ अन्य इसके विरोध में खड़े दिखाई देते रहे हैं। समकालीन हिंदी कविता मूलतः मध्यमवर्ग, मजदूर, शोषित और किसानों की वापसी कविता है। यह कविता शोषण, असमानता और सामाजिक अन्याय को उजागर करती है और जनता में चेतना लाने का प्रयास करती है। समकालीन कवि पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले शोषण के विरुद्ध क्रांति की मशाल जलाते हैं।

शतक के अंतिम दशक में सोवियत संघ के विघटन के बाद कम्युनिस्ट विचारवादियों का मोहभंग हुआ, और इसका प्रभाव कविता में भी देखने को मिलता है। कवि इस मोहभंग की स्थिति को अपने काव्य में इस प्रकार व्यक्त करते हैं,

"जो हमने किया सब व्यर्थ गया
ऐसा न कहिए कामरेड–
बरसों बरस सैकड़ों फीट ड्रिलिंग के बाद अचानक
तेल खुदाई इंजीनियर को लगता हैं
यहाँ इस मिट्टी में नहीं है तेल
तो क्या हुआ
फिर कहीं और हम सूंघेंगे मिट्टी"[11]

कुछ कवियों ने अपनी कविताओं का मार्ग परिवर्तित कर उसे प्रकृति, समाज और जनजीवन के साथ जोड़ा। इस काल के कवियों में मार्क्स के विचारों का समर्थन और विरोध दोनों ही दृष्टिगत होते हैं। सत्यपाल सहगल जैसे कवि मार्क्स के संदर्भ में अपने अनुभव व्यक्त करते हैं,

"मर साले भूक्कड़ गमजदा मनहूस चेहरे
मुझे मार्क्स ने वरगलाया था
मैं तो बचपन से पढ़ाई लिखाई में होशियार था
निर्धन घर में जन्म लेने पर भी"[12]

वहीं, आलोकधन्वा जैसे कवियों की अधिकांश रचनाओं में मार्क्सवादी विचारधारा की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन हिंदी कवि क्रांति में विश्वास रखते हैं और इस क्रांति के लिए आवश्यक चेतना की प्राप्ति विचारों की संपन्नता से ही संभव होती है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से आम आदमी, मजदूर और किसानों को सामाजिक और आर्थिक अन्याय के प्रति सजग किया। समकालीन कवि कम्युनिस्ट विचारों का उपयोग समाज में जागरूकता फैलाने और क्रांति की बात कहने के लिए करते हैं। उनके काव्य में यह चेतना प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में दृष्टिगोचर होती है। यह साहित्य केवल व्यक्तिगत अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति सजगता, संघर्ष और क्रांति के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने का माध्यम भी है। समकालीन हिंदी कविता में यह दृष्टिकोण सामाजिक न्याय, समानता और विवेक की स्थापना की दिशा में एक निर्णायक कदम के रूप में कार्य करता है।

1990 से 2000 का कालखंड भारतीय इतिहास में आर्थिक और औद्योगिक उदारीकरण का दौर माना जाता है। इस समय देश में सरकारी नीतियों का मुख्य लाभ अधिकतर पूंजीपतियों को मिला, क्योंकि इन्हीं पूंजीपतियों ने अपनी पूँजी और शक्ति के बल पर सरकार को नियंत्रण में रखा हुआ था। चुनावी प्रक्रियाओं और अन्य प्रशासनिक कार्यों में राजनीतिक दलों और नेताओं को खुले हाथ से मदद करने वाले उद्योगपति, सत्ता में आने के बाद अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति में लगे हुए थे। सरकारी टेंडरों से लेकर जीवनावश्यक वस्तुओं के लाइसेंस तक केवल पूंजीपतियों को ही प्राप्त हो रहे थे। इस कारण वे जीवनावश्यक वस्तुओं की जमाखोरी में व्यस्त थे, जिससे बाजार में महंगाई और वस्तुओं की कमी का संकट पैदा हुआ। गरीब आदमी, संघर्षशील किसान और मजदूर दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ दूगने–तीगुने दामों पर खरीदने के लिए विवश थे।

कवि इस समय की वास्तविकता को गहराई से समझते हुए पूंजीपतियों और सरकार की नीतियों का तीखा चित्र प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में आर्थिक असमानता, सामाजिक अन्याय और भ्रष्टाचार को उकेरते हुए जनता में चेतना पैदा करने का प्रयास किया। उदाहरण स्वरूप, कवि इस यथार्थ को अपने काव्य में इस प्रकार दर्शाते हैं,

"थर्र काँपता था पूरा इलाक़ा
दरोगा से मंत्री तक सब उसके जूते की गन्ध से पाते थे होश
बिना मुँडेर वाली छत से वह दिन भर मूतता रहता
आते जाते किसी भी आदमी के सिर पर खल खल
ऐसा प्रताप था उसका"[13]

यह उद्धरण दर्शाता है कि किस प्रकार पूंजीपति का साम्राज्य प्रशासनिक और सामाजिक ढांचों में फैल गया और सामान्य जनता के लिए न्याय और सुरक्षा असंभव हो गई। समकालीन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से ऐसे शोषणकारी वातावरण और सत्ता के अत्याचार के खिलाफ प्रखर विरोध जताया। कवि

मजदूरों और आम जनता के संघर्ष को भी अपने काव्य में स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। वे पूंजीवाद और सामाजिक असमानता की कठोर वास्तविकताओं को उजागर करते हुए बताते हैं कि किस प्रकार पूंजीपति केवल अपने लाभ के लिए मजदूर की मेहनत और संसाधनों का दोहन करते हैं। इस संदर्भ में एक कवि लिखते हैं,

"मज़दूर मेहनत करने के लिए हों
सिर्फ़ मेहनत
पूंजीपति हों मेहनत की जमा पूंजी के
मालिक बन जाने के लिए
यानि, जो हो जैसा हो वैसा ही रहे
कोई परिवर्तन न हो
मालिक हों
गुलाम हों
गुलाम बनाने के लिए युद्ध हो
युद्ध के लिए फ़ौज हो
फ़ौज के लिए फिर युद्ध हो"[14]

यह उद्धरण पूंजीवाद की संरचना और इसके दुष्प्रभावों को उजागर करता है। इसमें दिखाया गया है कि मजदूर और आम नागरिक केवल मेहनत के लिए बने हैं, जबकि पूंजीपति उनके प्रयासों को अपने लाभ के साधन के रूप में उपयोग करते हैं। इस तरह का शोषण आर्थिक और सामाजिक असमानता के साथ–साथ राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा देता है।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कवियों ने समाज में व्याप्त राजनीतिक विद्रूपताओं, भ्रष्टाचार, जनतंत्र की वास्तविकता और पूंजीवाद के दुष्प्रभावों को अपने काव्य के माध्यम से स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। इन कविताओं का उद्देश्य केवल आलोचना नहीं है, बल्कि जनता में जागरूकता और चेतना फैलाना भी है। कवि समाज के इन असमान और अन्यायपूर्ण तत्वों पर प्रश्न उठाकर सामान्य नागरिक को सजग करने का प्रयास करते हैं। इसके साथ ही वे जनमानस में आक्रोश, सामाजिक संवेदनशीलता और परिवर्तन की भावना को भी विकसित करते हैं। समकालीन हिंदी कविता न केवल सामाजिक और आर्थिक असमानता का दस्तावेज़ है, बल्कि यह चेतना, जागरूकता और न्याय की स्थापना के लिए एक सक्रिय माध्यम के रूप में कार्य करती है। कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से आम आदमी, मजदूर, किसान और शोषित वर्ग के अधिकारों की रक्षा का संदेश दिया है और भ्रष्टाचार, सत्ता की लालसा और पूंजीवादी संरचनाओं के खिलाफ निरंतर संघर्ष की प्रेरणा प्रदान की है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कुमार कृष्ण – समकालीन हिंदी कविता का बीजगणित, पृ. सं. 23 (उद्धरित)
2. वही, पृ. सं. 25 (उद्धरित)
3. कुमार अंबुज – किवाड़, पृ. सं. 35, 36
4. कुमार विकल – निरूपमा दत्त मैं बहुत उदास हूँ, पृ. सं. 13, 14
5. अशोक वाजपेयी – अभी कुछ और, पृ. सं. 15
6. कुमार विकल – निरूपमा दत्त मै बहुत उदास हूँ, पृ. सं. 13
7. आलोकधन्व – दुनिया रोज बनती है, पृ. सं. 32
8. दिनेशचन्द्र वर्मा – स्वातंत्रोंत्तर हिंदी नाटक: समस्या और समाधान, पृ. सं. 100
9. मदन कश्यप – लेकिन उदास हैं पृथ्वी पृ. सं. 52
10. जयप्रकाश कर्दम–http://kavitakosh.org/kk/नया–भारत–बनाएँ–/–जयप्रकाश–कर्दम
11. अरुण कमल – नये इयलके में, पृ. सं. 79
12. सत्यपाल सहगल – कई चीजे, पृ. सं. 46
13. अरुण कमल – नये इलाक़े में पृ. सं. 64
14. गोरख पाण्डेय – जागते रहो सोने वालो, पृ. सं. 53